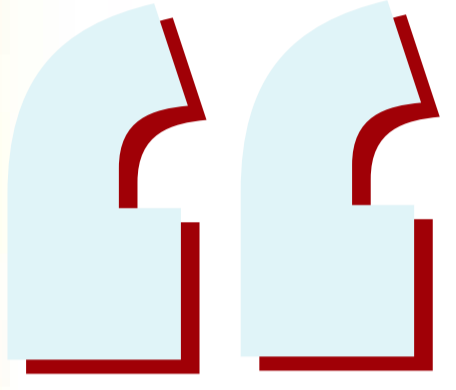
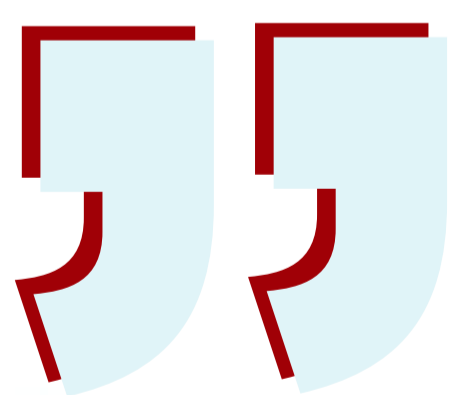




ललित सुरजन



आज देश में सरकारी और गैर सरकारी- दोनों क्षेत्रों में वृद्धाश्रम चल रहे हैं। सरकार के वृद्धाश्रम में यदि पूरी तरह से निःसहाय, निर्बल वृद्धों को आश्रय मिल रहा है तो अपेक्षाकृत साधन-सम्पन्न जनों के लिए उनके ओहदे और रुचि के अनुरूप ओल्ड एज होम, सीनियर सिटीजन होम, गैर सरकारी संस्थाओं द्वारा बनाए जा रहे हैं।



भा

रत में वरिष्ठ नागरिकों या यूँ कहें वृद्धजनों की संख्या लगातार बढ़ रही है। एक समय था जब साठ वर्ष आयु के व्यक्ति को वृद्ध ही माना जाता था। इधर यह स्थिति बदल गई है, यद्यपि सेवानिवृत्ति की आयु औसतन साठ वर्ष की ही है। रेल किराया, आयकर, बीमा आदि में भी साठ वर्ष को एक तरह से वृद्ध हो जाने का कानूनी दर्जा दिया जाता है। फिर आज के सामाजिक वातावरण में इस आयु समूह के लोग वरिष्ठ नागरिक ही कहलाया जाना पसंद करते हैं। वे वृद्धता का बोझ अपने ऊपर नहीं लादना चाहते और यह बड़ी हद तक उचित भी है। भारत वर्ष में आजादी के बाद से सामाजिक परिस्थितियों में बेहतरी के लिए जो बदलाव आए हैं उनमें से एक यह भी है कि 1947 में जहां एक भारतीय की औसत आयु 26-27 वर्ष होती थी वह बढ़ते-बढ़ते अब 57-58 साल के आसपास पहुंच चुकी है। इसमें चिकित्सा विज्ञान का काफी योगदान है यह मानना होगा। एक अनुमान है कि देश में अभी दस करोड़ से कुछ ज्यादा व्यक्ति हैं जो साठ की दहलीज लांघ चुके हैं। यह संख्या निकट भविष्य में बढ़ना ही है। एक तरफ युवा जनसंख्या में वृद्धि हो रही है और दूसरी ओर वरिष्ठ जनों की। गौरतलब है कि इन दस-ग्यारह करोड़ में कोई चार करोड़ लोग अकेले हैं।

स्पष्ट है कि इनकी यह बढ़ती संख्या अनेक स्तरों पर नीतिगत पुनर्विचार की मांग करती है। भारत, चीन और जापान में स्थिति कुछ अधिक जटिल है, लेकिन विश्व के अन्यान्य देश भी इस वास्तविकता से रूबरू हो रहे हैं। एक समय था जब वयप्राप्त जनों के बारे में बहुत ज्यादा सोचने की आवश्यकता नहीं समझी जाती थी। भारत जैसे पारंपरिक समाज में तो लगभग बिल्कुल नहीं। भारत और एशिया के अनेक देशों में संयुक्त परिवार व्यवस्था कमोबेश आज भी चली आ रही है। यह सामान्य तौर पर माना जाता है कि परिवार के युवतर सदस्य अपने बड़े-बूढ़े की फिक्र कर ही लेते होंगे, किन्तु सच्चाई इतनी सरल नहीं है। काशी और वृंदावन की विधवाएं तस्वीर का दूसरा पहलू पेश करती हैं। प्रेमचंद की 'बेटों वाली विधवा' से लेकर रमेश याज्ञिक की 'दादा जी तुम कब जाओगे' जैसी कहानियों में भी सत्य का दूसरा पक्ष उभरकर आता है। उषा प्रियंवदा की 'वापसी' कहानी को तो मैं भुला ही नहीं पाता। 'बागबान' जैसी फिल्म की कहानी भी तो यही है।

आज देश में सरकारी और गैर सरकारी- दोनों क्षेत्रों में वृद्धाश्रम चल रहे हैं। सरकार के वृद्धाश्रम में यदि पूरी तरह से निःसहाय, निर्बल वृद्धों को आश्रय मिल रहा है तो अपेक्षाकृत साधन-सम्पन्न जनों के लिए उनके ओहदे और रुचि के अनुरूप ओल्ड एज होम, सीनियर सिटीजन होम, गैर सरकारी संस्थाओं द्वारा बनाए जा रहे हैं। यही नहीं, अब तो यह संतानों की कानूनी जिम्मेदारी है कि वे अपने वृद्ध अभिभावकों का समुचित भरण-पोषण करें अन्यथा उन्हें अदालत से सजा भी हो सकती है। इस बात का महत्व यह जानकर और बढ़ जाता है कि फिलहाल ऐसे आठ-नौ करोड़ वृद्ध हैं जिन्हें अपने जीवनयापन की व्यवस्था खुद करना होती है। इस वृद्ध आबादी की अपनी आशा, आकांक्षाएं हैं, आवश्यकताएं हैं, लेकिन इसके साथ वृद्धावस्था से जुड़ी शारीरिक और मानसिक परिस्थितियां भी हैं। इस परिदृश्य का समूचेपन में आकलन करें तो बहुत से प्रश्न खड़े होते हैं।

अतुल गवांडे ने हाल में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'बीइंग मॉर्टल' (Being Mortal : Medicine and what matters in the end) में वृद्धावस्था से जुड़ी परिस्थितियों का विश्लेषण करने का प्रयत्न किया है। शीर्षक का हिन्दी में अनुवाद करें तो "नश्वरता : चिकित्सा एवं अंतिम परिणति" जैसा कुछ शीर्षक बनेगा। लेखक एक चिकित्सक है जिसकी रुचि वृद्धजनों की समस्याओं की ओर जागृत हुई। इसके बाद उसने यह तलाशने की कोशिश की कि नश्वर जीवन में वृद्धावस्था के सोपान पर पहुंचकर चिकित्सा विज्ञान उसके कितने काम आ सकता है तथा अंततः क्या होना है। यह अतुल की चौथी पुस्तक है। इसके पहले भी वे चिकित्सा विज्ञान पर तीन लोकप्रिय पुस्तकें लिख चुके हैं। अतुल भारतवंशी हैं, लेकिन उनका जन्म अमेरिका में ही हुआ